International Journal of Advanced Educational Research
ISSN: 2455-6157; Impact Factor: RJIF 5.12
www.educationjournal.org
Volume 2; Issue 3; May 2017; Page No. 151-152

मीराँबाई के 'पदों' में काव्य–कला

Dr. Savati
Principle, Divya Jyoti Central School, Hisar, Haryana, India

प्रस्तावना

मीराँबाई का नाम कृष्ण भक्त कवियों में बड़े आदर के साथ लिया जाता है। मीराँबाई को साधु–संगति तथा कृष्ण प्रेम भाव से दूर करने के लिए इनके देवर राव विक्रम सिंह ने काफी प्रयास किया। लेकिन उन्हें सफलता न मिल पाई। मीराँबाई ने अनन्य भाव से कृष्ण की आराधना की। इनकी कुल 11 प्रमाणिक रचनाएँ मानी गई हैं। इनकी अधिकाँश रचनाओं में कृष्ण के प्रति समर्पण भाव चित्रित हुआ है। प्रस्तुत लेख में हम मीराँबाई के पदों में काव्य कला के अन्तर्गत विरहानुभूति, रहस्यानुभूति, प्रेम भावना, सामाजिक मापदण्ड, श्रृगांर भावना तथा गीति तत्व आदि का अध्ययन करेंगे।

प्रेम जीवन की नैसर्गिक आवश्यकता है। समय तथा उम्र के अनुसार प्रेम का रुप परिवर्तित हो जाता है। लेकिन इसकी महत्ता जन्म से मृत्यूपर्यन्त बनी रहती है। मीराँ का कोमल भावुक हृदय श्री कृष्ण प्रेम से परिपूर्ण है। उनके मन में श्री कृष्ण से मिलन के लिए अत्यंत व्याकुलता है, बेचैनी है। वह अपनी स्थिति को स्पष्ट करते हुए कहती है–

''जोगियाँ से प्रीत कियाँ दुख होई।
प्रीत कियाँ सुख ना मोरी सजनी, जोगी मित न कोई।
रात दिवस कल नाहिं परत है, तुम मिलियाँ बिनि मोई।
ऐसे सूरत या जग माँही, फेरि न देखी सोई।
मीरा रे प्रभु कब रे मिलोगे, मिलियाँ आँणद होई।।''[1]

मीराँ का मानना है उसकी स्थिति को हर कोई नहीं समझ सकता। मीराँ की विरहजन्य की पीड़ा को श्री कृष्ण ही समझ सकते हैं या उन जैसा कोई प्रेमी हृदय।

''को विरहनी को दुख जांणै हो।
जा घट विरहा सोई लखि है, कै कोई हरिजन मानै हो।
रोगी अंतर बैद बसत है, बैद ही ओखद जांणै हो।
विरह दरद उरि अंतरि मांही, हरि विणि सब सुख कांनै हो।
दुगधा कारण फिरै दुखारी, सुरत बसी सुत मांनै हो।
चात्रग स्वाति बूंद मन मांही, पीव–पीव उकलांणै हो।
सब जग कूड़ो कटंक दुनिया, दरध न कोई पिछांणै हो।
मीरा के पति रमैया, दूजो नंहि कोई छाणै हो।।''[2]

प्रेम के दो पक्ष होते हैं– संयोग और वियोग। विरह की अनुभूति जितनी पीड़ादायक व कष्टदायक होती है ठीक इसके विपरीत संयोग की स्थिति उतनी ही आनन्दायक व सुखदायक होती है। प्रेम के संयोग पक्ष में व्यक्ति स्वेच्छा से अपने साथी के प्रति समर्पित होता है। दोनों एक–दूसरे की भावनाओं का व मान–सम्मान का ध्यान रखते हैं। दोनों ही एक–दूसरे के अनुरुप कार्य करते हैं तथा वहीं कार्य करते हैं जिससे उसके साथी को खुशी मिले। यथा–

''मैं तो गिरधर के घर जाऊँ।
गिरधर म्हाँरो सांचो प्रीतम, देखत रुप लुभाऊं।
रैण पड़े तब ही उठि जाऊँ, भोर गये उठि आऊँ।
रैणदिना वाके संग खेलूं, ज्यूं–ज्यूं वाहि रिझाऊँ।
जो पहिरावै सोई पहिरूं, जो दे सोई खाऊं।
मेरी उनकी प्रीत पुराणी, उण बिन पल न रहाऊं।
जहाँ बैठावे तित ही बैठूँ, बेचै तो बिक जाऊं।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, बार–बार बलि जाऊँ।।''[3]

मीराँ की भक्ति माधुर्य–भाव से परिपूर्ण है। वह सगुण तथा निर्गुण दोनों रुपों में ईश्वर को मानती है। वह भक्ति से संबंधित किसी सम्प्रदाय विशेष का न तो विरोध करती है और न ही समर्थन करती है। वह सगुण तथा निर्गुण दोनों रुपों को समान महत्त्व देती है। यद्यपि वह आन्तरिकता से भगवान श्री कृष्ण की भक्त है तथा अपने मन–मन्दिर में उन्हीं की उपासना करती हैं। श्री कृष्ण के रुप सौंदर्य का वर्णन करते हुए कवयित्री कहती है कि–

''म्हारो परनाम बाँके बिहारी जी।
मोर मुकुट माथाँ तिलक विराज्याँ, कुण्डल, अलकाँ कारी जी।।
अधर मधुर धर वंशी बजावाँ, रीझ रीझावाँ, ब्रजनारी जी।
या छब देख्याँ मोह्याँ मीराँ, मोहण गिरवरधारी जी।।''[4]

मीराँ ने यद्यपी निर्गुण का विरोध नहीं किया लेकिन हम सब यह तथ्य भली–भाँति जानते है कि उनका मन कृष्ण भक्ति में ही रचा–बसा रहा। मीराँ के पदों में अनेक स्थलों पर रहस्यानुभूति की मार्मिकताओं का चित्रण देखने को मिलता है।

''आली री म्हारे णेणा बाण पड़ी
चित चढ़ी म्हारे माधुरी मूरत, हिवड़ा अणी गड़ी।
कब से ठाढ़ी पंथ निहारां, अपने भवन खड़ी।
अटक्यां प्राण सांवरो प्यारी, जीवन मूर जड़ी।
मीरा गिरधर हाथ बिकानी, लोक कह्या बिगड़ी।।''[5]

मनुष्य जीवन में हारता तभी है जब वह निराशा की जकड़न में जकड़ा जाता है। जब उसके अपने उससे दूर चले जाते हैं या अपनों के द्वारा उसके विश्वास को छला जाता है तब जीवन जीने की उमंग खत्म हो जाती है और निराशा में मानव मन में नकारात्मक भाव हावी होने लगते हैं। कवयित्री की अवसाद की स्थिति का चित्रण निम्न पंक्तियों में दृष्टव्य है–

''होजी हरि कित गये णेह लगाय।
णेह लगायं मेरो, हर लीयो रस भरी टेर सुनाय।
मेरे मण में ऐसी आवै, मरूं जहर विष खाय।
छाड़ि गए विसवास घात करि, णेह केरी नाव चढ़ाय।
मीरां के प्रभु कब रे मिलोगे, रहे मधुपुरी छाय।।''[6]

मनुष्य की सामाजिक आवश्यकताएँ मनुष्य को सामाजिक बनने के लिए प्रेरित करती है व उसे समाज के अनुसार आवश्यक दिशा–निर्देश देती है। मनुष्य को समाज द्वारा निर्धारित मान्यताओं और आदर्शों का पालन करना चाहिए। लेकिन मीराँ समाज की परवाह नहीं करती है। वह समाज के सभी आक्षेपों को हँसते–हँसते स्वीकारती हुई अपने मन की करती है।

''पग बाँध घुंघरया णाच्यारी।
लोक कह्या मीरा बावड़ी, सास कह्या कुलनासी री।
विष रो प्यालो राणां भेज्या, पीवां मीराँ हांसी री।
तण मण वांरयां हरि चरणां मां दरसण अमरित प्यास्यां री।
मीरा रे प्रभु गिरधर नागर, थारी सरणां आस्यां री।।''[7]

समाज के मापदण्ड के अनुसार मीराँ अपना जीवन व्यतीत करती तो उसे ईश्वर से दूर ही रहना पड़ता क्योंकि मनुष्य के जीवन में हर ऐशो–आराम के लिए समय है। केवल बात जब ईश्वर की आती है तो उसका जीवन इतना व्यस्त है कि उसकी प्राथमिकताओं की सूची में चाहकर भी ईश्वर के लिए समय नहीं है। लेकिल मीराँ जीवन का यर्थाथ जानती है। अतः वह ऐसी मूर्खता नहीं करती और अपने जीवन को ईश्वर भक्ति के प्रति समर्पित करती हैं। यथा–

प्रभु तो मिलण कैसे होय।
पांच पहर धंधे में बीते, तीन पहर रहे सोय।
मानष जनम अमोलक पायो, सोतै डार्‌यो खोय।
मीरां के प्रभु गिरधर भजीये होनी होय सो होय।।''[8]

संसार की अज्ञानता व मूर्खता को अभिव्यक्त करते हुए कवयित्री कहती है–

''यौ संसार कुबुध रौ भांड़ो साध संगत णा भावां।
साधां जणरी निंद्या ठाणां, करम रा कुगत कुमांवां।
राम नाम बिनि मुकुति न पांवां, फिर चौरासी जावां।
साध संगत मां भूल णा जावां मूरिख जणम गुमावां।
मीरा रे प्रभु थारी सरणां, जीव परम पद पावां।।''[9]

मीराँ ने अपने पदों की अभिव्यक्ति मुख्यतः गीति–शैली में की है। जिससे उनकी भावाभिव्यक्ति में भावों व संवेदनाओं की पराकाष्ठा देखने को मिलती है। अनुभूति से प्रस्फुटित यह आत्माभिव्यक्ति हृदयस्पर्शी तथा सहज है। राग–रागनियों में रचित उनके पदों में जीवन के विभिन्न भावों का चित्रांकन है।

रंग भरी राग भरी राग सूं भरी री।
होली खेल्यां स्याम संग रंग सूं भरी री
उड़त गुलाल लाल बादला रो रंग लाल।
पिचकां, उड़ावां रंग–रंग री झरी, री।
चोवा चन्दण अरगजा म्हा, केसर णो गागर भरी री।
मीरां दासी गिरधर नागर, चेरी चरण धरी री।।''[10]

उपसंहार

मीराँबाई का हिन्दी साहित्य जगत में महत्त्वपूर्ण तथा गौरवर्पूण स्थान है। ये सच्चे अर्थों में श्री कृष्ण की उपासिका थी। इनका जीवन पूर्ण रुप से श्री कृष्ण के लिए समर्पित था। सभी प्रकार की यातनाओं को नकारते हुए वे अपने भक्ति पथ पर निश्च्छल भाव से अडिग रही। तन–मन–धन से कृष्ण भक्ति के प्रति अपने जीवन को समर्पित कर इन्होनें अपने जीवन को सार्थक बनाया और अपनी अमूल्य रचनाओं से हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल को स्वर्णिम काल बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। निःसन्देह अपनी अमर–अजर रचनाओं के कारण ये सदैव हमारे मध्य उपस्थित रहेंगीं।

सन्दर्भ सूची

1. 'मध्यकालीन काव्य कुंज': डॉ० रामसजन पाण्डेय, पृ० 72
2. 'मध्यकालीन काव्य कुंज': डॉ० रामसजन पाण्डेय, पृ० 72
3. 'मध्यकालीन काव्य कुंज': डॉ० रामसजन पाण्डेय, पृ० 70
4. 'मध्यकालीन काव्य कुंज': डॉ० रामसजन पाण्डेय, पृ० 68
5. 'मध्यकालीन काव्य कुंज': डॉ० रामसजन पाण्डेय, पृ० 69
6. 'मध्यकालीन काव्य कुंज': डॉ० रामसजन पाण्डेय, पृ० 76
7. 'मध्यकालीन काव्य कुंज': डॉ० रामसजन पाण्डेय, पृ० 71
8. 'मध्यकालीन काव्य कुंज': डॉ० रामसजन पाण्डेय, पृ० 76
9. 'मध्यकालीन काव्य कुंज': डॉ० रामसजन पाण्डेय, पृ० 75
10. 'मध्यकालीन काव्य कुंज': डॉ० रामसजन पाण्डेय, पृ० 74